DEV SANSKRITI
VISHWAVIDYALAYA

ISSN: 2581-4885

# INTERDISCIPLINARY JOURNAL OF YAGYA RESEARCH

Peer Reviewed Research Journal

VOLUME 1 ISSUE 2

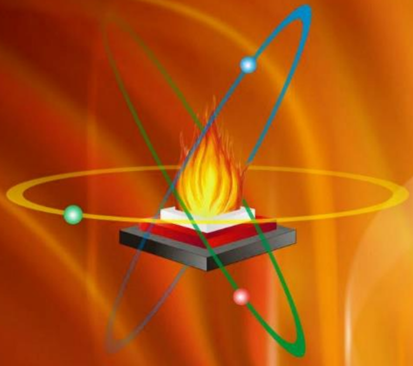

**PUBLISHED BY:**
DEV SANSKRITI VISHWAVIDYALAYA, Shantikunj, Haridwar - 249411 (UTTARAKHAND)

www.dsvv.ac.in

*OPEN ACCESS ONLINE JOUNRAL*

# यज्ञ: एक ऐतिहासिक एवं वैज्ञानिक दृष्टि

डॉ. रवीन्द्र सिंह[1*]

[1*]एसोसिएट प्रोफेसर, भारतीय इतिहास एवं संस्कृति विभाग, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार

*संवादी लेखक: डॉ. रवीन्द्र सिंह. ईमेल: ravindra.singh@dsvv.ac.in

**सारांश.** मानव की शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शान्ति के लिए प्राचीन ऋषि-मुनियों ने अनेक विधानों की व्यवस्था की थी, जिनका पालन करते हुए मानव अपनी आत्मशुद्धि, आत्मबल-वृद्धि और आरोग्य की रक्षा कर सकता है, इन्हीं विधि-विधानों में से एक है यज्ञ। वैदिक विधान से हवन, पूजन, मंत्रोच्चारण से युक्त, लोकहित के विचार से की गई पूजा को ही यज्ञ कहते हैं। यज्ञ मनुष्य तथा देवताओं के बीच सम्बन्ध स्थापित करने वाला माध्यम है। अग्नि देव की स्तुति के साथ ऋग्वेद का प्रारम्भ भारतवर्ष में यज्ञ का प्राचीनतम ऐतिहासिक-साहित्यिक साक्ष्य है। वहीं सिन्धु घाटी की सभ्यता के कालीबंगा, लोथल, बनावली एवं राखीगढ़ी के उत्खननों से प्राप्त अग्निवेदियाँ इसका पुरातात्त्विक प्रमाण है। यज्ञ तत्वदर्शन- उदारता, पवित्रता और सहकारिता की त्रिवेणी पर केन्द्रित है। यही तीन तथ्य ऐसे हैं, जो इस विश्व को सुखद, सुन्दर और समुन्नत बनाते हैं। ग्रह नक्षत्र पारस्परिक आकर्षण में बैठे हुए ही नहीं है, बल्कि एक-दूसरे का महत्वपूर्ण आदान-प्रदान भी करते रहते हैं। परमाणु और जीवाणु जगत भी इन्हीं सिद्धांतों के सहारे अपनी गतिविधियाँ सुनियोजित रीति से चला रहा है। सृष्टि संरचना, गतिशीलता और सुव्यवस्था में संतुलन इकोलॉजी का सिद्धांत ही सर्वत्र काम करता हुआ दिखाई पड़ता है। हरियाली से प्राणि पशु निर्वाह, प्राणि शरीर से खाद का उत्पादन, खाद उत्पादन से पृथ्वी को खाद और खाद से हरियाली। यह सहकारिता चक्र घूमने से ही जीवनधारियों की शरीर यात्रा चल रही है। समुद्र से बादल, बादलों से भूमि में आर्द्रता, आर्द्रता से नदियों का प्रवाह, नदियों से समुद्र की क्षतिपूर्ति - यह जल चक्र धरती और वरूण का सम्पर्क बनाता और प्राणियों के निर्वहन के लिए उपयुक्त परिस्थितियाँ उत्पन्न करता है। शरीर के अवयव एक दूसरे की सहायता करके जीवन चक्र को घूमाते हैं। यह यज्ञीय परम्परा है, जिसके कारण जड़ और चेतन वर्ग के दोनों ही पक्ष अपना सुव्यवस्थित रूप बनाए हुए हैं।

**कूट शब्द.** मानव, यज्ञ, तत्वदर्शन, सहकारिता, परमाणु और जीवाणु

## यज्ञ का ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक विवेचन

अग्नि देव की स्तुति के साथ ऋग्वेद (1/1/1) का प्रारम्भ भारतवर्ष में यज्ञ का प्राचीनतम ऐतिहासिक-साहित्यिक साक्ष्य है। यह इस तथ्य का भी स्पष्ट प्रमाण है कि प्रारम्भिक वैदिक काल के आने तक भारतवासी न केवल यज्ञ की विधा से सुपरिचित हो चुके थे, बल्कि इसका गहन मर्म भी समझ चुके थे।

सिन्धु-सरस्वती सभ्यता के प्राक्ऐतिहासिक काल में हम यज्ञ के स्पष्ट प्रमाण पाते हैं और यह ऐतिहासिक सत्य है कि भारत के चिर अतीत से प्रारम्भ यज्ञ की विधा, वैदिक युग तक जीवन का अभिन्न अंग बन गई थी। सिन्धु घाटी की सभ्यता के कालीबंगा, लोथल, बनावली एवं राखीगढ़ी के उत्खननों से प्राप्त अग्निवेदियाँ इसका प्रमाण है। ये वेदियाँ वस्तुतः मिट्टी के बने गड्ढे थे, जिनमें प्रत्येक का आकार लगभग 45 X 45 सेंटीमीटर था। लोथल से आयताकार एवं वृत्ताकार अग्निवेदियां मिली हैं, जिनका उपयोग साकलिया के अनुसार पारिवारिक अनुष्ठानों के लिए किया जाता था।

यज्ञ मनुष्य तथा देवताओं के बीच सम्बन्ध स्थापित करने वाला माध्यम था। क्रमशः यज्ञों की संख्या बढ़ती गई तथा अनेक याज्ञिक प्रथाएँ प्रचलित हो गयीं, यथा- अग्निहोत्र, दर्श और पौर्णमास, षोडशी, अतिरात्र, पुरुषमेध, पञ्चमहायज्ञ आदि तत्कालीन समाज में प्रचलित थे तथा बाजपेय, राजसूय और अश्वमेध जैसे यज्ञों को सम्पन्न करना प्रतिष्ठा का प्रतीक माना जाता था (1)। पंचमहायज्ञ प्रत्येक गृहस्थ के लिए अनिवार्य था इसके अन्तर्गत भूतयज्ञ, पितृयज्ञ, मनुष्ययज्ञ, देवयज्ञ और ब्रह्मयज्ञ सम्मिलित थे। राजसूय यज्ञ राजाओं द्वारा सम्पन्न किए जाते थे। उत्तरवैदिक काल में परीक्षित के वंशज जनमेजय का वर्णन आता है, जिसने आसन्दीवन मे अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न किया था (2)।

शुंग वंश के प्रथम शासक पुष्यमित्र शुंगने अपने साम्राज्य को सुस्थिर करने के लिए अश्वमेध यज्ञ किया था (1) एवं यज्ञ की परम्परा को पुनः प्रतिष्ठित किया गया। अयोध्या अभिलेख मे पुष्यमित्र को दो अश्वमेध यज्ञों का अनुष्ठान करने वाला कहा गया है (3)। एक राजसूय तथा दो अश्वमेध करने वाला गौतमि पुत्र शातकर्णी शुंग वंश का समकालीन सातवाहन राजा था (4)। कनिष्क के शासन काल के चैबीसवें वर्ष अंकित मथुरा के निकट ईशापुर ग्राम से अभिलेख उपलब्ध हुआ है। इसके अनुसार भारद्वाज गोत्र के एक ब्राह्मण रुदिल के पुत्र द्रोणिल ने 92 रात्रि तक चलने वाला यज्ञ सम्पन्न किया था (5)। एक अन्य यूप स्तम्भ लेख में सप्तसोम यज्ञ से संबंधित सात यूपों के निर्माण का उल्लेख है (6)। भूतपूर्व उदयपुर राज्य के भंदासा नामक स्थान से प्राप्त अभिलेख में 60 दिन तक चलने वाले यज्ञ का उल्लेख है (7)। इसी प्रकार भूतपूर्व कोटा राज्य के बड़वा नामक स्थान से प्राप्त अभिलेख में त्रिरात्र यज्ञ सम्पन्न किए जाने का उल्लेख है (8)। नयनिका के नानाघाट अभिलेख से ज्ञात होता है कि अग्न्यावेध, अन्वराम्भनीयं, गवमयानं, अगीनसतीरमं, अप्तोर्यम, अंगीरसमयान, गार्गतीरात्र, छान्दोगयवमान, अत्रीरांत्र, त्रयोदरात्र, दशरात्र यज्ञ भी किए गए (9)।

भारशिवों ने गंगा के तट पर दशाश्वमेध घाट पर दस अश्वमेध यज्ञ किया था। समुद्रगुप्त ने दिग्विजय के पश्चात् अश्वमेध यज्ञ किया था (10)। इस यज्ञ की स्मृति में प्रचलित मुद्राओं में एक तरफ यज्ञ स्तम्भ में बांधे घोड़े का चित्र है तथा दूसरी तरफ अश्वमेध यज्ञ क्रम अंकित है (11)। कुमारगुप्त ने भी अपने पितामह की तरह अश्वमेध यज्ञ किया था। इसको प्रमाणित करता एक सिक्का मिला है जिसमें अश्वमेध महेन्द्र लिखा है (12)। हर्षचरित में यज्ञों का वर्णन आया है तथा उनसे उठते हुए धुएं का उल्लेख है। थानेश्वर का उल्लेख करते हुए बाण लिखता है कि इसकी दशों दिशाएँ यज्ञों की सहस्रों ज्वालाओं से देदीप्यमान रहती हैं (13)। दन्तिदुर्ग ने उज्जयिनी में हिरण्यगर्भ यज्ञ किया (14)।

## यज्ञ की प्रासंगिकता एवं वैज्ञानिक द्रष्टि

प्राचीन काल से ही यज्ञ केवल धार्मिक क्रिया के अंग के रूप में ही मान्य नहीं था, अपितु इससे पर्यावरण पारिस्थितिकी सन्तुलन एवं नैरोग्य भी प्राप्त होता था। स्वामी दयानन्द का कहना है कि यज्ञ एक रासायनिक क्रिया है। उन्होंने उन

विचारों का खण्डन किया है, जिनमें यह कहा गया है कि उत्तम पदार्थों को खाने की अपेक्षा अग्नि में जलाकर नष्ट कर देना उचित नहीं।

पदार्थ विद्या के अनुसार इसमें द्रव्य अविनाशी नियम (Law of conservation of mass) लागू होता है। इस नियम के अनुसार किसी भी रासायनिक प्रक्रिया में, भाग लेने वाले पदार्थों के भार का योग अपरिवर्तित रहता है, अतः अग्नि में आहुति देने से हानि तो नहीं लाभ अवश्य है। जब अग्नि में कोई वस्तु डाली जाती है, तो अग्नि इसके स्थूल रूप को तोड़कर सूक्ष्म बना देती है। यजुर्वेद (1.8) में अग्नि को धुरसि कहकर इसी सत्य को प्रतिपादित किया गया है। अग्नि में डाल देने से पदार्थ हल्का होकर शीघ्र सारी वायु में फैल जाता है। उसकी भेदक शक्ति बढ़ जाती है। यह तथ्य ग्राह्य के गैसीय व्यापनशीलता के नियम (Grahm's law of diffusion of gases) का आधार है कि मिर्च खाने से केवल खाने वाले व्यक्ति पर ही प्रभाव पड़ता है, किन्तु पीसकर उड़ा देने से आस-पास बैठे व्यक्ति खांसने लगते हैं। उसी मिर्च को जलाने से बहुत लोगों पर दूर तक तीक्ष्ण गन्ध का प्रभाव होता है। अतः जो गैस जितनी हल्की होगी, वह उतनी ही शीघ्र वायु में मिल जाएगी। ऐसा ही यजुर्वेद (6.16) में कहा गया है। केसर, कस्तूरी, पुष्प, इत्र आदि की सुगन्ध में वह सामर्थ्य नहीं कि गृहस्थ वायु को बाहर निकालकर शुद्ध वायु का प्रवेश करा सके, क्योंकि उसमें भेदक शक्ति नहीं, परन्तु अग्नि, वायु और दुर्गन्ध युक्त पदार्थों को छिन्न-भिन्न और हल्का करके बाहर निकालकर शुद्ध वायु के अन्दर आने देने का कार्य करती हैं (15)। भारतीय संस्कृति ने अग्निहोत्र को अपनाया है, तो किसी अन्धविश्वास के कारण नहीं, अपितु वैज्ञानिक आधार पर। अग्निहोत्र में किन-किन रासायनिक परिवर्तनों के द्वारा क्या-क्या पदार्थ उत्पन्न होते हैं - इसका निश्चय करना कठिन है, फिर भी यज्ञ के द्वारा उत्पन्न होने वाले पदार्थों का अनुमान तो लगाया ही जा सकता है। हाँ, यह निश्चय करना कठिन है कि कितनी सामग्री डालने से कौन-सा पदार्थ कितनी मात्रा में उत्पन्न होगा, क्योंकि यज्ञकुण्ड में सर्वदा तापांश समान नहीं रहता एवं यह भी सम्भव है कि रासायनिक क्रिया पूर्ण होने से पूर्व ही जो पदार्थ बने हैं, वे आपस में मिलकर कोई अन्य पदार्थ बना लें या उड़कर वायु में मिल जाएं तथा ऑक्सीकरणपूर्ण हो जाएं, यह भी आवश्यक नहीं।

अग्निहोत्र में जो द्रव्य डाले जाते हैं, उनका लगभग 75 प्रतिशत लकड़ी होता है। इसके जलने से लगभग 5000 सेल्सीयस तापमान हो जाता है। लकड़ी के मुख्य भाग सेलुलोज लिग्नो सेलुलोज में लगभग 45.62 प्रतिशत हाइड्रोजन, 28.57 प्रतिशत कार्बन तथा 23.81 प्रतिशत ऑक्सीजन होती है। लकड़ी के जलने का अभिप्राय सेलुलोज तथा लिग्नो सेलुलोज का ओक्सीकृत हो जाना है। फिर धीरे-धीरे जो हाईड्रोकार्बन बनते हैं, वे 400-6000 सेल्सीयस के बीच जल जाते हैं। सेलुलोज तथा लिग्नो सेलुलोज ऑक्सीजन के साथ मिलकर कार्बनडाइऑक्साइड तथा पानी बनाते हैं। पानी भाप बनकर उड़ जाता है तथा कार्बनडाइऑक्साइड वायु में मिल जाती है।

यज्ञ वेदी खुले स्थान पर होने से वायु भली प्रकार आती रहती है। अतः कार्बन मोनोऑक्साइड और कार्बन धूलि बनने की सम्भावना अतिन्यून रहती है। घी के जलने से जो सुगन्ध उत्पन्न होती है, उसका कारण कैप्रोनिक एल्डिहाइड, नार्मल ऑक्टीलिक एल्डिहाइड, वैलेरिक एल्डिहाइड तथा कई अन्य उड़नशील एल्डिहाइड एवं वाष्पीकरण वसील अम्ल होते हैं। ये सभी वायु में मिल जाते हैं, जिससे सर्वत्र सुगन्ध फैल जाती है। घी के जो कण बिना जले ही वायु में उड़ जाते हैं, वे अतिसूक्ष्म होते हैं। ये अग्निहोत्र से उत्पन्न होने वाली गैसों को स्वयं में लीन करके वायुमण्डल को अधिक समय तक पवित्र रखते हैं।

घी की आहुति देने से जो पदार्थ उत्पन्न होते हैं, उनमें हाईड्रोकार्बनों की मात्रा पर्याप्त हाती है। ये हाईड्रोकार्बन यज्ञ कुण्ड के तापांश (450-5500 सेल्सीयस) पर ऑक्सीजन से मिलकर कुछ अन्य पदार्थ बना लेते हैं व्हीलर एवं ब्लेयर (16) के अनुसार मेथेन ऑक्सीकरण कर मेथिल एल्कोहल तथा फार्मेल्डिहाइड आदि बना लेती है, क्योंकि ये पदार्थ वायु में मिलते रहते हैं। इसलिए फार्मेल्डिहाइड के ओक्सीकृत हो जाने की बहुत कम सम्भावना है। फार्मेल्डिहाइड गैस कृमियों का

नाश करके वायु को मनुष्योपयोगी बना देती है। फार्मेल्डिहाइड से घरों के कृमियों का नाश तथा वायु को सुगन्धित किया जाता है। वायु शुद्धि के लिए फार्मेल्डिहाइड लैम्प बनाए गए। मैक्सोमो (17) का विचार है कि कार्बन डाइऑक्साइड की अधिक मात्रा के कारण भी पौधों की तेजी से वृद्धि होती है।

डॉ० फुन्दन लाल अग्निहोत्री, मध्यप्रदेश के राजकीय टी.बी. सेनेटोरियम में मेडिकल अफसर थे। उन्होंने वहां यज्ञ से तपेदिक के रोगियों की चिकित्सा की। 80 प्रतिशत रोगियों को इस विधि से पूर्ण लाभ हुआ।

यज्ञ के द्वारा रोगों का क्षय सम्भव है। आज शारीरिक शक्ति का ह्रास होता जा रहा है, नई-नई व्याधियाँ उत्पन्न हो रही हैं। यदि अग्निहोत्र की ओर ध्यान दिया जाये, तो न केवल व्याधियां नष्ट हो जाएं, अपितु राष्ट्र में आध्यात्मिक वातावरण भी बन जाए। उसके द्वारा चारित्रिक उत्थान का स्वप्न भी साकार हो सकेगा।

चरक ने लिखा है कि “आरोग्य प्राप्त करने की इच्छा वालों को विधिवत् हवन करना चाहिए। बुद्धि शुद्ध करने की यज्ञ में अपूर्व शक्ति है। जिनका मस्तिष्क दुर्बल है या बुद्धि मलिन है, वे यदि यज्ञ करें तो उनकी मानसिक दुर्बलताएँ शीघ्र ही दुर्बल हो सकती है। साम.मा. 38 में उल्लिखित है कि यज्ञ करने से सद्बुद्धि तेज और भगवान की प्राप्ति होती है।

जैमिनी ब्राह्मण में अग्नि की तीन संज्ञाएँ दी हैं - भूपति, भुवनपति, भूतानां पतिः। विष्णु पुराण में इन तीनों के पन्द्रह-पन्द्रह भेद करके 45 अग्नियाँ बताई है। महाभारत में अग्नि के दस गुण बताए गए हैं कि अग्नितत्व के विकास से ही मनुष्य उध्वमुखी शक्तियाँ से सम्बन्ध जोड़ता है, ये हैं - 1. दुर्घषता, 2. ज्योति, 3. ताप, 4. पावक, 5. प्रकाश, 6. शौच, 7. राग, 8. लघु, 9. तैक्षण्य, 10. ऊधर्वगमन। ये अग्नि के दस गुण शरीर में पकट होते हैं, अर्थात शरीर में बल का संचार, चमक और गर्मी, अग्नि के गुण हैं। वही अन्न पचाता है, वही ज्ञान कराता है। शरीर की अशुद्धता को जलाता है या दूर करता है। उसी में आकर्षण का गुण है और वही शरीर को हल्का और शक्तिशाली रखता है। मानसिक शक्तियों को वही ऊपर उठाकर ले जाता है और देव शक्तियों से मेल कराकर आत्मा का विकास करता है।

ये दस गुण-पाँच प्राण और पांच उपप्राणों की अलग-अलग क्रियाएँ तथा गुण हैं। इनके विकास का अपना अलग विज्ञान है, जो यज्ञ, प्राणायाम, ध्यान, वैदिक मन्त्रों के उच्चारण आदि के रूप में व्यवहृत हुआ है। आज ये सब बातें लोग भूलते जा रहे हैं। इसीलिए वायु, शक्ति, बल, तेजस और दिव्य शक्तियों के सम्पर्क से प्राप्त होने वाले लाभ नष्ट होते चले जा रहे हैं। संयमित जीवन से अपने आप शरीर में अग्नि तत्व के विकास का एक नैसर्गिक उपाय था, वह भी नष्ट हो चला। इस तरह अग्नि देवता को कुपित कर संसार स्वतः अग्नि में जलता जा रहा है। यदि शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, सामाजिक और आध्यात्मिक, धार्मिक उन्नति के द्वार खोलने हैं, तो हमें फिर से अग्नि तत्व जैसे महाभूत की नए सिरे से खोज करनी होगी, प्रतिष्ठा देनी होगी और ऋषियों के दिए ज्ञान को धारण करना होगा।

विज्ञान की अब तक की थोड़ी सी जानकारी इन्हीं तथ्यों की पुष्टि करती है। अग्नि ज्वाला को आज एक रासायनिक क्रिया माना जाता है और विज्ञान यह मानता है कि उसमें वायुमण्डलीय ऑक्सीजन के साथ प्रतिक्रिया उत्पन्न करके उष्मा पैदा करता है। यदि ऑक्सीजन के साथ रासायनिक क्रिया अपूर्ण और जटिल हुई और पूरी तरह ऑक्सीकरण नहीं हो पाया, तो गर्मी कम होगी और यदि ऑक्सीकरण पूरा हो जाता है, तो कार्बन डाइऑक्साइड गैस, जो धुँए के रूप में निकलती है, प्राप्त होती है। “*शुचिः अग्निर्जलाषी*” है, जब हमारे तत्वदर्शी यह कहते थे, तब लोग उपहास करते थे कि अग्नि से जल का क्या सम्बन्ध, पर आज का विज्ञान भी इस बात को मानता है कि लौ लगाकर पानी निकलता है पर यह पानी गैस रूप में होता है। हिन्दी डाइजेस्ट सन् 1968 के एक अंक में इस तथ्य को स्वीकार किया गया है। “आयो वा इदं सर्वमाप्न वन” अर्थात् वह आप सर्वव्यापी है ऐसा कहा गया है। तैत्तिरीय संहिता में अग्नि को प्रियतन् छनद अर्थात् प्रवाह या “वैव्स” बताया हैं, उनमें मन रूपी प्राण स्फुल्लिंग को प्रवाहित कर सूक्ष्म लोकों की गतिविधियों का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

आत्मिक प्रयोजनों में भी अग्नि का प्रयोग विशिष्ट है। तपश्चर्या योग साधना में अग्नि की समीपता एवं सहायता से अनेकों उपासनात्मक उपचार होते हैं। अग्नि पूजा ही यज्ञ प्रधान विषय है। न्याय दर्शन, मनुस्मृति, सिद्धांत शिरोमणि (गणिताध्याय) गोपथ ब्राह्मण, गीता, ऋग्वेद अनेक शास्त्र वचनों में उपासनात्मक एवं आध्यात्मिक एवं अध्यात्म प्रयोजनों में आने वाली अग्नि को यज्ञाग्नि कहते हैं। उसके प्रकटीकरण एवं क्रियान्वयन की पद्धति को अग्निहोत्र कहते हैं। दैवी शक्तियों के साथ सम्पर्क बनाने एवं अनुग्रह पाने में अग्नि का सहयोग असाधारण है। अगरबत्ती, धूप, दीप में अग्नि की ही गरिमा है। यज्ञाग्नि तो प्रत्यक्ष ही विष्णुस्वरूप है।

ऋग्वेद के अनुसार अग्नि के बिना देवता की अनुकम्पा प्राप्त नहीं होती। अथर्ववेद के अनुसार हमारे अनुदान और प्रतिवेदन देवताओं के पास एक अग्नि के माध्यम से पहुँचते हैं। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार अग्नि ही देवताओं के गुण हैं। वे इसी माध्यम से मनुष्यों की भेंट स्वीकार करते और अपने वरदान उन पर उड़ेलते हैं। स्वर्ग तक आत्मा को पहुँचाने वाला वाहन यज्ञाग्नि को माना गया है। यज्ञीय सत्कर्मों से प्रसन्न हुए देवता, मनुष्यों की सुख सुविधा का सम्वर्धन करते हैं। उन्हें श्रेष्ठ समुन्नत बनाते हैं।

वेदों में परमपिता परमेश्वर से प्रार्थना की गई है - हे, प्रभु! हमारा जीवन यज्ञमय हो, जिससे हमारे अन्तस में "इदं न मम" की भावना का उदय हो। यज्ञ से अहिंसा (न्याय) की सात्विक वृत्तियों का उदय होता है। अथर्ववेद में कहा गया है - मैं मानव जीवन-रूपी यज्ञ में मन से हवन करता हूँ। यह मेरा जीवन-यज्ञ जगत् रचयिता प्रभु ने विस्तृत किया है, इसमें सब देव, दिव्यभाव एवं प्रसन्नता से शामिल हों। मनुष्य जन्म और शरीर सभी योनियों में श्रेष्ठ बनाये रखूँ और इससे कभी भी दूषित कर्म न होने दूँ।

भारतीय संस्कृति में मनुष्य योनि को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। वेदों में तो इस शरीर को अयोध्या कहा गया है। "अष्ट चक्रा नव द्वारा देवानां पूरयोध्या"। इसी शरीर के द्वारा हम धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष को हासिल कर सकते हैं, लेकिन यह तभी सम्भव है, जब हमारे सभी कर्म "दैव्य" कोटि यानि यज्ञमय (सतकर्म) हों। इसमें नित्य किए जाने वाले पंचमहायज्ञों (ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ और नृयज्ञ) के अतिरिक्त संस्कृति, भाषा, राष्ट्र, समाज, धर्म, आत्मा और सर्वहित-यज्ञों को शामिल किया गया है। पूरे ब्रह्माण्ड में हर पल "इदं न मम" का यज्ञ नदियाँ, वृक्ष, बादल, पुष्प, सूर्य, चन्द्र, वायु, सागर, वन सभी कर रहे हैं। यदि ब्रह्माण्ड के इन यज्ञों (परोपकार व कर्तव्य) के रहस्य को समझ लिया जाए, तो स्वार्थ और हिंसा के कारण जो समस्याएँ पैदा हुई हैं, उनका समाधान निकल सकता है।

मनुस्मृति पंचमहायज्ञों के सम्यक पालन पर जोर देती है (18)। इन पंचमहायज्ञों को सम्यक रीति से पालन करते हुए हमें "इदं न मम" की भावना से पूर्ण हो जाना चाहिए, क्योंकि जीवन-मुक्ति और जीवनोद्देश्य का रहस्य इन यज्ञों में ही निहित है। अग्निहोत्र करते समय आहुति देते हैं तो मन में त्याग की भावना होती है और यह कामना भी होती है - हे परमात्मा, जिस तरह इस हवनकुण्ड की लौ से और इससे निकलने वाले सुगन्ध से पूरा वातावरण शुद्ध पवित्र और विकासवान हो रहा है, उसी तरह व्यक्ति का जीवन भी निरन्तर ऊर्ध्वगामी और पवित्र बने, जिससे मनुष्य जन्म लेना सार्थक हो सके। इन सभी यज्ञों में आत्म-यज्ञ सर्वोपरि है। आत्म-यज्ञ से ही आत्मज्ञान प्राप्त हो सकता है और आत्म-ज्ञान तभी सफल हो सकता है, जब हम आत्म परिष्कार के लिए तैयार हो जाएं। आत्मपरिष्कार मानसिक, वाचिक और कर्मगत उत्पन्न होने वाले विकास को दूर किए बिना नहीं हो सकता है और इन विकारों को दूर करने के लिए ही आत्मयज्ञ किया जाता है।

आमतौर पर व्यक्ति, करना व पाना तो बहुत कुछ चाहता है, परन्तु संकल्प शक्ति कमजोर होने और रास्ते के भटकाव के कारण उसकी इच्छा की पूर्ति नहीं होती है। व्यक्ति की दिनचर्या ऐसी अस्त-व्यस्त (असंतुलित) हो गई है कि आत्म परिष्कार की सोच ही नहीं पाते, इसलिए भारतीय संस्कृति में संध्या करने का विधान दिया गया है और यही आत्म-यज्ञ की पहली सीढ़ी है।

यज्ञ तत्वदर्शन- उदारता, पवित्रता और सहकारिता की त्रिवेणी पर केन्द्रित है। यही तीन तथ्य ऐसे हैं, जो इस विश्व को सुखद, सुन्दर और समुन्नत बनाते हैं। ग्रह नक्षत्र पारस्परिक आकर्षण में बंधे हुए ही नहीं है, बल्कि एक-दूसरे का महत्वपूर्ण आदान-प्रदान भी करते रहते हैं। परमाणु और जीवाणु जगत भी इन्हीं सिद्धांतों के सहारे अपनी गतिविधियाँ सुनियोजित रीति से चला रहा है। सृष्टि संरचना, गतिशीलता और सुव्यवस्था में संतुलन इकोलॉजी का सिद्धांत ही सर्वत्र काम करता हुआ दिखाई पड़ता है। हरियाली से प्राणि पशु निर्वाह, प्राणि शरीर से खाद का उत्पादन, खाद उत्पादन से पृथ्वी को खाद और खाद से हरियाली। यह सकारिता चक्र घूमने से ही जीवनधारियों की शरीर यात्रा चल रही है। समुद्र से बादल, बादलों से भूमि में आर्द्रता, आर्द्रता से नदियों का प्रवाह, नदियों से समुद्र की क्षतिपूर्ति - यह जल चक्र धरती और वरूण का सम्पर्क बनाता और प्राणियों के निर्वहन के लिए उपयुक्त परिस्थितियाँ उत्पन्न करता है। शरीर के अवयव एक दूसरे की सहायता करके जीवन चक्र को घूमाते हैं। यह यज्ञीय परम्परा है, जिसके कारण जड़ और चेतन वर्ग के दोनों ही पक्ष अपना सुव्यवस्थित रूप बनाए हुए हैं। इसी से यज्ञतत्व को विश्वनाभि की धुरी कहा गया है।

## उपसंहार

मानव की शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शान्ति के लिए प्राचीन ऋषि-मुनियों ने अनेक विधानों की व्यवस्था की थी, जिनका पालन करते हुए मानव अपनी आत्मशुद्धि, आत्मबल-वृद्धि और आरोग्य की रक्षा कर सकता है, इन्हीं विधि-विधानों में से एक है यज्ञ। वैदिक विधान से हवन, पूजन, मंत्रोच्चारण से युक्त, लोकहित के विचार से की गई पूजा को ही यज्ञ कहते हैं।

विधि-विधान पूर्वक यज्ञधूम्र पान करने से खांसी, दमा, प्रतिश्याय, हनुग्रह, शिरारोग तथा वात-कफ जनित रोग नष्ट हो जाते हैं। औषधियों के धुएँ का सेवन करने से इन्द्रियाँ वाणी तथा मन भी प्रसन्न होते हैं। बाल नहीं झड़ते, दांत सुदृढ़ होते हैं एवं मुख सुगन्धित रहता है।

वैज्ञानिक भी आज यज्ञ की महत्ता को स्वीकार करने लगे हैं। उनके अनुसार यज्ञ के सुगन्धित धुएँ में एक विशेष प्रकार की गंध होती है, जो रोगाणुओं (वायरस) को मारने या बेहोश करने में प्रभावकारी है। इसके आधार पर आज मच्छरों से बचाव करने के लिए अनेक सुगंधित अगरबत्तियां और दवायें तैयार की गई हैं, साथ-साथ उन रोगों से भी बचे रहते हैं जो कृमियों, मच्छरों के प्रकोप के कारण उत्पन्न होते हैं। चन्दनादि का सुगन्धित धुँआ चर्म रोगों से हमारी रक्षा करता है तथा हमारे तन-मन को शीतलता प्रदान करता है।

इधर, वैज्ञानिक क्षेत्रों में यज्ञ से सम्बन्धित कई खोजें हुई हैं, विशेषकर यज्ञ से उत्पन्न सुगन्धित धुँए पर। इस विषय पर वैज्ञानिकों का कहना है कि यज्ञ के इस सुगन्धित धुँए का असर हमारे दिमाग पर होता है, जिससे हमारी कार्य-कुशलता बढ़ जाती है। अमेरिका के मनोवैज्ञानिक आर्नी कैन के अनुसार स्मृति और हवन की महक के बीच गहरा रिश्ता है। इस सुगन्धित धुँए के माध्यम से खोई हुई याद्दाश्त को वापस लाया जा सकता है। प्राचीन ऋषि-मुनि इस रहस्य को जानते थे, तभी तो चन्दनादि एवं यज्ञ की भस्म को मस्तक (ललाट) पर लगाने का विधान बनाया गया था।

## संदर्भ

1. मलिक, जसवीर सिंह. प्राचीन भारत में पौरोहित्य. क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1999:18

2. शतपथ ब्राह्मण 11/5/4, चौखम्बा संस्कृत सीरिज़, वाराणसी, 1964

3. गोयल, श्री. प्राचीन भारतीय अभिलेख व संग्रह, खंड 1, प्रथम संस्करण. राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर. 1982:164

4. Katre SM, Gode OK (editors). A volume of eastern and Indian studies. Karnatak Publishing House, Bombay. 1939:29-30

5. Archeological survey of India annual report. The director general archeological survey of India, New Delhi. 1911:40

6. Carnac R, Charles EAW, Idaham O, Aiyangar SK, Bhandarkar DR (Editors). The Indian antiquary. Swati Publications. 1929;58:53

7. Ancient India. Archaeological Survey of India, Delhi. 1946-1962;21:245

8. Archeological survey of India annual report. The director general archeological survey of India, New Delhi. 1907:59

9. गोयल, श्री. प्राचीन भारतीय अभिलेख व संग्रह, खण्ड 1, प्रथम संस्करण. राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर. 1982:424

10. Epigraphia Indica. The director general archeological survey of India, New Delhi. 1892:269

11. मजूमदार, र. भारतीय जन का इतिहास (वाकाटक गुप्त एज), फलक 3, 1 मोतीदास बनारसीदास, नई दिल्ली. 1968

12. उपाध्याय, वा. गुप्त साम्राज्य का इतिहास,खण्ड-1, द्वितीय संस्करण. इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन) प्राइवेट लिमिटेड इलाहाबाद. 1957:108

13. हर्षचरित. चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी. 1972:147

14. महाजन बी. प्राचीन भारत का इतिहास. एस. चाँद. पब्लिशिंग, नई दिल्ली. 2001:699

15. सरस्वती द. पूना प्रवचन सात एवं ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, वेद विषय विचार, वैदिक यन्त्रालय, अजमेर, राजस्थान. 1970

16. Wheelar TS and Blair PW. J Soc Chem Ind. 1923;75:42-491

17. Maximov NA. Plant physiology. Mc Grow Hill, Newyork. 1938

18. भट्ट कु, टीकाकार. मनुस्मृति 3.70. निर्णय सागर प्रेस, बम्बई. 1946